National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 55-59
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ० दीपक कुमार पाठक
सहा० आचार्य संस्कृत,
नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence:
डॉ० दीपक कुमार पाठक
सहा० आचार्य संस्कृत,
नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत

‘अथातो ब्रह्मजिज्ञासा’ : ब्रह्मसूत्र का दार्शनिक आधार

डॉ० दीपक कुमार पाठक

सार (Abstract)

भारतीय दर्शन परंपरा में ब्रह्मसूत्र वेदान्त दर्शन का सूत्ररूप आधारग्रन्थ है। इसका प्रथम सूत्र—“अथातो ब्रह्मजिज्ञासा”—समस्त वेदान्त चिंतन का द्वार है। यह सूत्र केवल दार्शनिक जिज्ञासा का उद्घोष नहीं, बल्कि मानव जीवन की आध्यात्मिक परिपक्वता का संकेत भी है। प्रस्तुत शोधपत्र में इस सूत्र के भाषिक, दार्शनिक, मीमांसात्मक एवं आध्यात्मिक आधार का विश्लेषण किया गया है।

शंकराचार्य, रामानुजाचार्य एवं मध्वाचार्य के भाष्यों के आलोक में ‘अथ’, ‘अतः’ तथा ‘ब्रह्मजिज्ञासा’ पदों का विवेचन किया गया है। साथ ही उपनिषदों के मूल वचनों—विशेषतः मुण्डकोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद् तथा कठोपनिषद्—के सन्दर्भ में ब्रह्मजिज्ञासा की पृष्ठभूमि स्पष्ट की गई है।

यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ‘अथातो ब्रह्मजिज्ञासा’ केवल सैद्धान्तिक दर्शन नहीं, बल्कि मोक्षमार्ग की अनिवार्य आध्यात्मिक प्रक्रिया का उद्घाटन है।

शब्द संकेत : ब्रह्मसूत्र, वेदान्त, शंकरभाष्य, ब्रह्मजिज्ञासा, उपनिषद्, मोक्ष

भूमिका

भारतीय दर्शन की षड्दर्शन परंपरा में वेदान्त का विशिष्ट स्थान है। वेदान्त का सूत्रग्रन्थ ‘ब्रह्मसूत्र’ है, जिसके रचयिता परम्परानुसार वेदव्यास माने जाते हैं। ब्राम्हसूत्र का प्रथम सूत्र— ‘अथातो ब्रह्मजिज्ञासा’[1] यद्यपि अत्यंत संक्षिप्त है, तथापि सम्पूर्ण वेदान्तदर्शन का सार इसमें निहित है। यह सूत्र चार अध्यायों में विभक्त ग्रन्थ का प्रवेशद्वार है—

1. समन्वयाध्याय
2. अविरोधाध्याय
3. साधनाध्याय
4. फलाध्याय

प्रथम सूत्र में ही यह प्रतिपादित है कि अब (अथ) ब्रह्म की जिज्ञासा की जानी चाहिए। यहाँ कुछ प्रश्न सहज ही उठते हैं—

- ‘अब’ क्यों?
- किसके लिए?
- किस आधार पर?
- क्या यह कर्मकाण्ड के पश्चात् है?
- या वैराग्य के उदय के पश्चात्?

इन अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तरों को ज्ञात कर उनका दार्शनिक परीक्षण करना ही इस शोधपत्र का विषय है।

ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि

उपनिषदों में ब्रह्म-जिज्ञासा

ब्रह्मसूत्र उपनिषदों का सार है। उपनिषदों में बारम्बार ब्रह्मज्ञान की प्रेरणा मिलती है— **"स यो ह वै तत्परं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।"**[2], "तत्त्वमसि"[3], **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते..."**[4]। इन वचनों से स्पष्ट है कि ब्रह्म की जिज्ञासा वेदांत का मूल प्रेरक तत्त्व है।

'अथ' पद का दार्शनिक अर्थ

शंकराचार्य अपने ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य में लिखते हैं— अथ शब्दः अनन्तर्ये मङ्गले च। अर्थात् 'अथ' शब्द का प्रयोग अनन्तर्य (पूर्व साधन के पश्चात्) एवं मङ्गलार्थ होता है। आचार्य शंकर के अनुसार— ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकार उस पुरुष को है जिसमें—

- नित्य-अनित्य-वस्तु-विवेक
- वैराग्य
- षट्सम्पत्ति
- मुमुक्षुत्व का उदय हो चुका हो। यहाँ 'अथ' साधनचतुष्टय-सम्पत्ति के अनन्तर का बोधक है।

'अतः' का तात्पर्य

'अतः' शब्द हेतु-हेतुमद्भाव को प्रकट करता है। अर्थात्— क्योंकि संसार अनित्य है, दुःखमय है, कर्म सीमित फल देता है— अतः ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिए। यह विचार विशेषतः उपनिषद् वचनों से पुष्ट होता है— **"परिक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्।"**[5] यहाँ कर्मफल की सीमितता देखकर ब्रह्मजिज्ञासा का उदय होता है।

'ब्रह्मजिज्ञासा' की मीमांसा

'जिज्ञासा' शब्द 'ज्ञा' धातु से 'सन्' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न है— अर्थात् जानने की इच्छा। यहाँ जिज्ञासा केवल बौद्धिक जिज्ञासा नहीं, अपितु तत्त्वबोध की आकांक्षा है। आचार्य शंकर के अनुसार— ब्रह्म वस्तु सिद्ध है, परन्तु अज्ञान से आच्छन्न है। अतः ब्रह्मजिज्ञासा वास्तव में अविद्या-निवृत्ति का साधन है।

ब्रह्मसूत्र की रचना, संरचना एवं दार्शनिक उद्देश्य

ग्रन्थकार एवं काल-निर्धारण

परम्परा के अनुसार ब्रह्मसूत्र के रचयिता वेदव्यास (बादरायण) माने जाते हैं। यह ग्रन्थ वेदान्त का सूत्ररूप संक्षेप है, जिसे 'वेदान्तसूत्र' अथवा 'शारीरकसूत्र' भी कहा जाता है। काल-निर्धारण विषय में मतभेद हैं, किन्तु सामान्यतः इसे ईसा पूर्व 200 से ईसा पश्चात् 200 के मध्य का ग्रन्थ माना जाता है।

ब्रह्मसूत्र की संरचना

ग्रन्थ चार अध्यायों में विभक्त है—

1. **समन्वयाध्याय** — उपनिषद्वाक्यों का समन्वय
2. **अविरोधाध्याय** — विरोध-निराकरण
3. **साधनाध्याय** — साधन-निर्णय
4. **फलाध्याय** — मोक्ष-स्वरूप

शंकरभाष्य में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' का दार्शनिक विश्लेषण

शंकराचार्य का दृष्टिकोण

आदि शंकराचार्य अपने ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य में लिखते हैं— **अथ शब्दोऽनन्तर्ये मङ्गले च।**[6] अतः शब्दो हेतौ। शंकर के अनुसार ब्रह्मजिज्ञासा कर्मकाण्ड के अनन्तर नहीं, बल्कि **वैराग्य-सम्पन्न साधक** के लिए है।

अधिकारवाद (Adhikā ritva)

शंकराचार्य साधनचतुष्टय को अनिवार्य मानते हैं—

1. नित्य-अनित्य-वस्तु-विवेक
2. इहामुत्रफलभोगविराग
3. षट्सम्पत्ति
4. मुमुक्षुत्व अतः 'अथ' शब्द साधनचतुष्टय-सम्पन्नता[7] का द्योतक है।

ब्रह्मज्ञान और मोक्ष

वेदान्त के अनुसार ब्रह्मज्ञान और मोक्ष परस्पर अभिन्न सम्बन्ध रखते हैं। आदि शंकराचार्य के मत में मोक्ष कोई नई प्राप्ति नहीं, बल्कि आत्मस्वरूप की पहचान है; अज्ञान (अविद्या) के कारण जीव स्वयं को देह-मन से अभिन्न मान लेता है, और यही बन्धन है। जब श्रवण-मनन-निदिध्यासन के द्वारा **"अहं ब्रह्मास्मि"**[8] का प्रत्यक्ष बोध होता है, तब अविद्या का नाश हो जाता है और वही अवस्था मोक्ष कहलाती है। अतः अद्वैत वेदान्त में ब्रह्मज्ञान ही मोक्ष का तात्कालिक कारण है— मोक्ष कोई कर्मफल नहीं, बल्कि ज्ञानजन्य अविद्यानिवृत्ति है। इसीलिए कहा गया है—**"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"**[9] अर्थात् जो ब्रह्म को जानता है, वही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है; यही ज्ञान-मुक्ति की पराकाष्ठा है।

विशिष्टाद्वैत एवं द्वैत में 'ब्रह्मजिज्ञासा'

रामानुजाचार्य का मत

विशिष्टाद्वैत वेदान्त में 'ब्रह्मजिज्ञासा' का अर्थ केवल निर्गुण तत्त्व की दार्शनिक खोज नहीं, बल्कि सगुण, सर्वकल्याणगुणनिधि परमात्मा—नारायण—की साक्षात् प्राप्ति की आकांक्षा है। रामानुजाचार्य अपने श्रीभाष्य में ब्रह्मसूत्र 1.1.1 "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि 'अथ' कर्मयोग की शुद्धि के अनन्तर ज्ञानयोग के आरम्भ का सूचक है और 'ब्रह्म' से अभिप्राय सगुण, सविशेष परमेश्वर है, जो चित् (जीव) और अचित् (जगत) को अपने शरीर के समान अधिष्ठित करता है। अतः यहाँ ब्रह्मजिज्ञासा का तात्पर्य उस परम पुरुषोत्तम के स्वरूप, गुण, विभूति और साधनरूप भक्ति-योग को जानने की जिज्ञासा है; ज्ञान यहाँ भक्ति की आधारभूमि है और मोक्ष ईश्वरप्राप्ति तथा दिव्य सायुज्य के रूप में समझा जाता है।[10]

मध्वाचार्य का दृष्टिकोण

द्वैत वेदान्त में 'ब्रह्मजिज्ञासा' का अर्थ अद्वैत की भाँति आत्मा और ब्रह्म की अभेद-प्रतिपत्ति नहीं, बल्कि जीव और परमेश्वर के वास्तविक भेद का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना है। मध्वाचार्य के अनुसार ब्रह्मसूत्र का

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" जीव को सर्वथा भिन्न, सर्वशक्तिमान विष्णु-परब्रह्म के स्वरूप को जानने की प्रेरणा देता है। द्वैत में ब्रह्म (विष्णु) स्वतन्त्र तत्त्व है और जीव परतन्त्र; दोनों का भेद अनादि और वास्तविक है। अतः ब्रह्मजिज्ञासा का लक्ष्य 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति नहीं, बल्कि परमेश्वर की महिमा, सर्वाधिकारिता और अपनी दासत्व-स्थिति का तत्त्वज्ञान है। इस ज्ञान से भक्ति दृढ़ होती है और ईश्वरानुग्रह द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है; इसलिए द्वैत में ब्रह्मजिज्ञासा ज्ञान और भक्ति के समन्वित साधन का दार्शनिक आधार है।

ब्रह्मसूत्र एवं पूर्वमीमांसा का सम्बन्ध

जिज्ञासा का स्वरूप

पूर्वमीमांसा में 'जिज्ञासा' का स्वरूप कर्मप्रधान एवं विधिनिष्ठ है। जैमिनि कृत पूर्वमीमांसा सूत्र का प्रथम सूत्र है— "**अथातो धर्मजिज्ञासा**"[11]। यहाँ 'जिज्ञासा' का अर्थ तत्त्वदर्शन की खोज नहीं, बल्कि वेदविहित 'धर्म'—अर्थात् यज्ञादि कर्मों—का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा है। पूर्वमीमांसा के अनुसार धर्म प्रत्यक्ष से ज्ञेय नहीं, अपितु केवल वेदवाक्य से सिद्ध होता है; अतः जिज्ञासा का लक्ष्य वेदविधियों का तात्पर्य-निर्णय, विधि-निषेध का विवेचन तथा कर्मफल की प्राप्ति है। इस प्रकार पूर्वमीमांसा में जिज्ञासा ज्ञान के लिए ज्ञान नहीं, बल्कि कर्तव्य-कर्म के निर्धारण हेतु है; यह आचरण-प्रधान और फलाभिमुख दार्शनिक खोज है, जो वेद की अपौरुषेयता और विधि-प्रामाण्य पर आधारित है। **कर्म से ज्ञान की ओर संक्रमण**

उपनिषद् में स्पष्ट है— "**परिक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्**"[12] यहाँ कर्म की सीमितता देखकर ब्रह्मजिज्ञासा का उदय होता है। अतः वेदान्त पूर्वमीमांसा का परिशिष्ट नहीं, बल्कि उसका परिष्कार है।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' का भाषिक-व्याकरणिक विश्लेषण

- 'अथ' — अव्यय
- 'अतः' — हेत्वर्थक अव्यय
- 'ब्रह्म' — बृह् धातु से निष्पन्न (वृद्धौ)
- 'जिज्ञासा' — ज्ञा धातु + सन् प्रत्यय

व्याकरण की दृष्टि से यह सूत्र **तत्पुरुष समास** की संरचना में है।

ब्रह्मजिज्ञासा का आध्यात्मिक आयाम

कठोपनिषद् में— "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"।[13] यह जागरण ब्रह्मजिज्ञासा का आह्वान है। ब्रह्मजिज्ञासा वस्तुतः—

- आत्मबोध की यात्रा
- अविद्या-निवृत्ति
- मोक्ष का साधन है।

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" और "जन्माद्यस्य यतः" का आन्तरिक सम्बन्ध

ब्रह्मसूत्र का द्वितीय सूत्र है— **जन्माद्यस्य यतः**॥[14] यह सूत्र ब्रह्म के लक्षण का निर्धारण करता है। यदि प्रथम सूत्र जिज्ञासा का उद्घोष है, तो द्वितीय सूत्र उस जिज्ञासा के विषय का स्वरूप बताता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् का आधार

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।[15] ब्रह्मसूत्र का "जन्माद्यस्य यतः" इसी उपनिषद्-वाक्य का सूत्ररूप संक्षेप है।

अर्थात् ब्रह्म वह है जिससे जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय होती है।

शंकराचार्य की व्याख्या

आदि शंकराचार्य के अनुसार यह सूत्र ब्रह्म का तटस्थ-लक्षण देता है। ब्रह्म स्वयं निर्गुण, निराकार है; परन्तु जगत के कारण के रूप में उसका तटस्थ-लक्षण किया जाता है।

समन्वयाध्याय का दार्शनिक प्रयोजन

समन्वयाध्याय का उद्देश्य उपनिषदों में प्रतिपादित विविध ब्रह्म-वाक्यों का समन्वय करना है। विविध उपनिषद्वाक्यों का "**एकत्व तत्त्वमसि**"[16] "**अहं ब्रह्मास्मि**"।[17] "**नेति नेति**"।[18]

इन वचनों में प्रथम दृष्टया विविधता प्रतीत होती है—

कहीं अभेद, कहीं निषेध, कहीं कारण-रूपता। ब्रह्मसूत्र का प्रयत्न है कि इन सभी वचनों का तात्पर्य एक ही परम तत्त्व—ब्रह्म—में स्थापित किया जाए।

ब्रह्मस्वरूप का दार्शनिक निर्धारण

निर्गुण और सगुण ब्रह्म

आदि गुरु शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म दो प्रकार से विवेचित होता है—

- परमार्थतः — निर्गुण ब्रह्म
- व्यावहारिकतः — सगुण ब्रह्म (ईश्वर)

वेदान्त में निर्गुण और सगुण ब्रह्म एक ही परम तत्त्व के दो भिन्न दृष्टिकोण माने जाते हैं। निर्गुण ब्रह्म वह है जो समस्त नाम-रूप और गुणों से परे, निर्विशेष, निराकार और अद्वितीय चैतन्यस्वरूप है—जिसे उपनिषद् "नेति नेति" (बृहदारण्यकोपनिषद् 2.3.6) कहकर निरूपित करते हैं; अद्वैत वेदान्त में यही परमार्थसत्ता है। वहीं सगुण ब्रह्म वही परम तत्त्व है जो मायोपाधि से युक्त होकर जगत का कारण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में प्रकट होता है—जैसा कि "**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**"[19] में वर्णित है। आदि शंकराचार्य के अनुसार निर्गुण ब्रह्म परमार्थतः सत्य है और सगुण ब्रह्म व्यावहारिक स्तर पर उपासना तथा सृष्टि-व्यवस्था का आधार; इस प्रकार दोनों में वस्तुतः भेद नहीं, बल्कि दृष्टि-भेद है।

ब्रह्म और जगत का सम्बन्ध

- अद्वैत — विवर्तवाद
- विशिष्टाद्वैत — शरीर-शरीरी भाव

• द्वैत — वास्तविक भेद

वेदान्त में ब्रह्म और जगत के सम्बन्ध की व्याख्या विभिन्न आचार्यों ने भिन्न रूप से की है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार, विशेषतः आदि शंकराचार्य के मत में, ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थसत्ता है और जगत उसी का विवर्त (आभास) है—अर्थात् ब्रह्म में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं होता, किन्तु अज्ञान के कारण नाम-रूपात्मक जगत प्रतीत होता है; इस दृष्टि से "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का सिद्धान्त प्रतिपादित होता है। इसके विपरीत रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत में जगत ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म उसका अन्तःस्थित आत्मा—अर्थात् भेदाभेद का विशिष्ट सम्बन्ध। वहीं मध्वाचार्य के द्वैत में ब्रह्म और जगत में वास्तविक और अनादि भेद स्वीकार किया गया है। इस प्रकार ब्रह्म-जगत सम्बन्ध वेदान्त में अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत—तीनों परम्पराओं में भिन्न दार्शनिक प्रतिपत्तियों के रूप में विकसित हुआ है।

ब्रह्मजिज्ञासा और साधनमार्ग

श्रवण– मनन– निदिध्यासन

शंकर के अनुसार ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु—

1. श्रवण
2. मनन
3. निदिध्यासन अनिवार्य हैं।

गीता का समर्थन

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते"।[20] यहाँ ज्ञान और परमात्मा की प्राप्ति का सम्बन्ध स्थापित है।

समकालीन दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" और ब्रह्म-विचार को केवल पारम्परिक आध्यात्मिक सिद्धान्त न मानकर, मानव अस्तित्व, चेतना और जीवन-अर्थ की खोज के रूप में पुनः समझा जा रहा है। आधुनिक युग में जहाँ विज्ञान भौतिक जगत की व्याख्या करता है, वहीं वेदान्त चेतना को मूल सत्ता मानता है—यह विमर्श चेतना-अध्ययन (Consciousness Studies) और न्यूरो-फिलॉसफी से संवाद स्थापित करता है। अस्तित्ववादी चिंतन मानव की मूल जिज्ञासा—"मैं कौन हूँ?"—को केंद्रीय प्रश्न मानता है; वेदान्त इसी प्रश्न का उत्तर आत्मा-ब्रह्म-अभेद के माध्यम से देता है। अद्वैत की व्याख्या, विशेषतः आदि शंकराचार्य की परम्परा में, अनुभवात्मक अद्वैत चेतना को अंतिम सत्य मानती है, जबकि समकालीन दार्शनिक बहसें भी विषय-चेतना (subjectivity) की प्राथमिकता पर बल देती हैं। इसके अतिरिक्त, वैश्विक नैतिक संकट, उपभोक्तावाद और मानसिक अशांति के संदर्भ में ब्रह्मजिज्ञासा को आंतरिक स्थिरता, आत्मबोध और सार्वभौमिक एकत्व की चेतना के रूप में देखा जा रहा है। इस प्रकार समकालीन दार्शनिक विमर्श में वेदान्त केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि अस्तित्व, चेतना और मूल्यबोध की सार्वकालिक खोज का सशक्त आधार बनकर उभरता है।

समालोचनात्मक समीक्षा (Critical Evaluation)

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' : केवल उद्घोष या दार्शनिक क्रान्ति?

ब्रह्मसूत्र (1.1.1) का प्रथम सूत्र "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" प्रथम दृष्टया एक साधारण उद्घोष प्रतीत हो सकता है, परन्तु दार्शनिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यह भारतीय चिंतन में एक गहन वैचारिक क्रान्ति का प्रतीक है। पूर्वमीमांसा में जैमिनि का "अथातो धर्मजिज्ञासा" कर्मप्रधान जीवन-दृष्टि का उद्घाटन करता है, जहाँ वेद का लक्ष्य यज्ञादि कर्तव्यों का निर्धारण है; किन्तु वेदान्त में यही संरचना "धर्म" से "ब्रह्म" की ओर उन्मुख होकर कर्म से ज्ञान की ओर संक्रमण का संकेत देती है। आदि शंकराचार्य के अनुसार 'अथ' साधनचतुष्टय-सम्पन्नता का द्योतक है और 'अतः' संसार की अनित्यता के बोध का परिणाम; अतः यह सूत्र केवल आरम्भिक वाक्य नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टि के रूपान्तरण की घोषणा है—बाह्य अनुष्ठान से आन्तरिक आत्मसाक्षात्कार की ओर। इस प्रकार "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" भारतीय दर्शन में कर्मकाण्डीय प्रवृत्ति से अद्वैतात्मक आत्मविद्या की ओर संक्रमण का दार्शनिक उद्घोष है, जो इसे केवल सूत्रारम्भ न बनाकर एक गहन वैचारिक क्रान्ति सिद्ध करता है।

ज्ञान बनाम कर्म : एक दार्शनिक विमर्श

आदि शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष केवल ज्ञान से संभव है— **"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः"**[21]। भारतीय दर्शन में ज्ञान और कर्म का सम्बन्ध अत्यंत सूक्ष्म तथा बहुस्तरीय विमर्श का विषय रहा है। जैमिनि कृत पूर्वमीमांसा सूत्र में कर्म को ही वेद का प्रधान विषय माना गया है; धर्मजिज्ञासा का लक्ष्य वेदविहित यज्ञादि कर्तव्यों का अनुष्ठान है, जिनसे अदृष्ट फल तथा स्वर्गादि की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में ब्रह्मसूत्र का प्रतिपाद्य ब्रह्मज्ञान है, और मोक्ष का साधन केवल ज्ञान माना गया है; कर्म अनित्य फल देने वाला है, अतः नित्य मोक्ष का कारण नहीं हो सकता। उपनिषदों में भी **"परिक्ष्य लोकान् कर्मचितान्..."**[22] कहकर कर्म की सीमितता का संकेत मिलता है। तथापि वेदान्त पूर्णतः कर्म-निरपेक्ष नहीं है; कर्म चित्तशुद्धि का साधन माना गया है, जिससे ज्ञान की पात्रता उत्पन्न होती है। भगवद्गीता में कर्मयोग और ज्ञानयोग का समन्वय प्रस्तुत कर यह स्पष्ट किया गया है कि निष्काम कर्म अन्ततः ज्ञान की ओर ले जाता है। इस प्रकार दार्शनिक दृष्टि से कर्म और ज्ञान विरोधी नहीं, बल्कि साधन-क्रम में स्थित दो स्तर हैं—कर्म बाह्य शुद्धि का साधन है और ज्ञान अंतिम मुक्ति का कारण।

शंकर का मत है कि कर्म अनित्य है, अतः उसका फल भी अनित्य होगा।

मोक्ष नित्य है, अतः उसका साधन भी ज्ञान ही हो सकता है। इसके विपरीत रामानुजाचार्य ज्ञान और भक्ति के समन्वय को स्वीकार करते हैं। मध्वाचार्य ईश्वर-भक्ति और अनुग्रह को प्रधान मानते हैं। इस प्रकार 'ब्रह्मजिज्ञासा' विभिन्न सम्प्रदायों में भिन्न साधन-मार्गों को जन्म देती है।

तात्त्विक आलोचना

1. क्या ब्रह्म वास्तव में तर्क से सिद्ध किया जा सकता है?
2. यदि ब्रह्म अवर्णनीय है, तो जिज्ञासा का विषय कैसे?
3. क्या ब्रह्मजिज्ञासा सार्वभौमिक है या केवल संन्यासियों के लिए?

शंकराचार्य का उत्तर है— ब्रह्म तर्क का विषय नहीं, प्रत्यगात्मानुभव का विषय है।

सूत्र का प्रयोजन तर्क से अधिक **श्रुति-समन्वय** है।

व्यापक उपसंहार (Conclusion)

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" यह सूत्र भारतीय आध्यात्मिक परंपरा की आत्मा है। यह मात्र एक वाक्य नहीं, अपितु—

- वैराग्य का उद्घोष है
- आत्मज्ञान का प्रारम्भ है
- संसार से निवृत्ति का संकेत है
- मोक्षमार्ग का द्वार है।

जीवन-दृष्टि में परिवर्तन

जब मनुष्य संसार की अनित्यता को देखता है— **"परिक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्"**।[23] तब उसके भीतर ब्रह्मजिज्ञासा का उदय होता है। यह जिज्ञासा बाह्य नहीं, आन्तरिक है। यह ज्ञान की जिज्ञासा है, सूचना की नहीं।

अद्वैत का परिप्रेक्ष्य

अद्वैत वेदान्त में— अहं ब्रह्मास्मि।[24] यह महावाक्य ब्रह्मजिज्ञासा का चरम परिणाम है। अविद्या का नाश = मोक्ष।

समकालीन संदर्भ

आज का युग भौतिक प्रगति का है, परन्तु मानसिक अशांति का भी। वेदान्त का यह उद्घोष—"अब ब्रह्म की जिज्ञासा करो"— मानव को बाह्य से आन्तरिक यात्रा की ओर प्रेरित करता है।

निष्कर्ष

ब्रह्मसूत्र का उद्घोष "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" वेदान्त-दर्शन का मूलाधार है। 'अथ' साधनचतुष्टय-सम्पन्नता एवं आध्यात्मिक परिपक्वता का सूचक है, 'अतः' संसार की अनित्यता तथा कर्मफल की सीमितता के बोध का द्योतक, और 'ब्रह्मजिज्ञासा' परम सत्य के ज्ञान की तीव्र आकांक्षा का प्रतीक है। उपनिषदों के महावाक्यों तथा श्रुति-प्रमाण के समन्वय से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मज्ञान ही मोक्ष का प्रत्यक्ष कारण है—जैसा कि आदि शंकराचार्य ने अपने भाष्य में प्रतिपादित किया है। पूर्वमीमांसा के "धर्मजिज्ञासा" से भिन्न, यह सूत्र कर्मप्रधान जीवन-दृष्टि से आत्मविद्या की ओर दार्शनिक संक्रमण का उद्घोष है। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत—तीनों परम्पराएँ इस सूत्र को अपने-अपने सिद्धान्तानुसार व्याख्यायित करती हैं, किन्तु सभी में यह ब्रह्म-तत्त्व की खोज का प्रारम्भ-बिन्दु है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" केवल ग्रन्थारम्भ का वाक्य नहीं, बल्कि भारतीय दार्शनिक चेतना में ज्ञानमार्ग की स्थापना और मोक्ष-साधना की दिशा का मौलिक तात्त्विक आधार है।

संदर्भ सूची (Bibliography)

(क) प्राथमिक स्रोत

- ब्रह्मसूत्र
- ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य
- श्रीभाष्य
- मुण्डकोपनिषद्
- तैत्तिरीयोपनिषद्
- छान्दोग्योपनिषद्
- बृहदारण्यकोपनिषद्
- कठोपनिषद्
- भगवद्गीता

(ख) द्वितीयक स्रोत

- राधाकृष्णन, एस. *Indian Philosophy*
- दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ. *History of Indian Philosophy*
- हाजरा, के.के. *Studies in Vedanta*
- शर्मा, चन्द्रधर. *भारतीय दर्शन*

पादटिप्पणियाँ (Footnotes)

1 ब्रह्मसूत्र १.१.१
2 मुण्डकोपनिषद् 3.2.9
3 छान्दोग्योपनिषद् 6.8.7
4 तैत्तिरीयोपनिषद् 3.1
5 मुण्डकोपनिषद् 1.2.12
6 ब्राम्हसूत्र शंकरभाष्य 1.1.1
7 वेदान्तसार (सदानन्द)
8 बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.10
9 मुण्डकोपनिषद् 3.2.9
10 श्रीभाष्य में ब्रह्मसूत्र 1.1.1
11 पूर्वमीमांसा सूत्र १.१.१
12 मुण्डकोपनिषद् 1.2.12
13 कठोपनिषद् 1.3.14
14 ब्रह्मसूत्र १.१.२
15 तैत्तिरीयोपनिषद् 3.1
16 छान्दोग्योपनिषद् 6.8.7
17 बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.10
18 बृहदारण्यकोपनिषद् 2.3.6
19 तैत्तिरीयोपनिषद् 3.1
20 भगवद्गीता 7.19
21 कठोपनिषद् 2.3.14
22 मुण्डकोपनिषद् 1.2.12
23 मुण्डकोपनिषद् 1.2.12
24 बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.10